[illegible]

महावीरचरितभाषा

अर्थात्

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुवीर की सद्वीरता

महाकवि श्रीभवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक
का भाषा गद्य और पद्यों में अनुवाद

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासीभूपउपनाम
लाला सीताराम बी० ए०

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

सर्वाधिकार] सन् [illegible] ई० [मूल्य [illegible]]

[illegible]

महावीरचरित भाषा

अथवा

अर्थात् पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र की कहानी

महाकवि भवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत नाटक
का भाषा गद्य और पद्यों में अनुवाद

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासीभूपउपनाम
लाला सीताराम बी० ए०

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

[दूसरी बार] सन् १९[illegible] ई० [मूल्य [illegible]]

प्राचीन नाटकमणिमाला

महावीरचरित भाषा

अर्थात्

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरघुवीर की कीर्ति

महाकवि श्रीभवभूति के प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थ
का भाषा गद्य और छन्दों में अनुवाद

अनुवादकर्त्ता

श्रीअवधवासी भूपकवि

लाला सीताराम बी. ए.

प्रकाशक

नेशनल प्रेस—प्रयाग

तीसरी बार] सन् १९२१ ई० [मूल्य [illegible]

लाला सीताराम, बी० ए०, रचित ग्रन्थ

और शेक्सपियर के नाटकों का स्वतन्त्र भाषानुवाद

१—भूल भुलैयाँ	।-)
२—[illegible] का नाश	-)
३—जङ्गल में मङ्गल	।-)
४—हैमलेट	।=)
५—राजा लियर	।=)
६—राजा रिचर्ड	।=)
७—[illegible]	।=)
८—[illegible] अपनी रुचि	।)
९—रघुवंश भाषा	।)
१०—कुमारसम्भव भाषा	=॥
११—मेघदूत भाषा	≡)
१२—ऋतुसंहार भाषा	-)
१३—महावीर-चरित भाषा	।=)
१४—मालती-माधव भाषा	।=)
१५—नागानन्द भाषा	।)
१६—मालविकाग्निमित्र भाषा	।)
१७—मृच्छकटिक भाषा	॥=)
१८—सावित्री	)॥
१९—नई राजनीति अर्थात् हितोपदेश भाषा, पहिला भाग	।-)
२०—नई राजनीति अर्थात् हितोपदेश भाषा, दूसरा भाग ..	।)
२१—उत्तर रामचरित भाषा	।≈)

मिलने का पता—

रामनरायन लाल, बुकसेलर

कटरा, इलाहाबाद।

और किशोर ब्रादर्स, मुट्ठीगंज, इलाहाबाद।

PREFACE TO THE FIRST EDITION

"Wherever", says Professor Wilson, "there exists a dramatic literature, it [illegible] entitled to the attention of the philosopher as well as the philologist, of the man of general literary taste as well as the professional scholar."

"Independent, however, of the claims to notice which the Hindu Theatre possesses upon principles which equally apply to the dramatic literature of every nation, it may advance pretensions to consideration on its own account, connected both with its peculiar merits and with the history of stage."

Hindu drama "in particular", writes Elphinstone, "which is the department with which we are best acquainted, rises to a high pitch of excellence". "To the age of these dramas must be added their undoubted literary value as repositories of much true poetry though of an oriental type" (Monier Williams). These plays exhibit a variety not surpassed in any other stage. (Elphinstone.)

Sir William Jones published his translation of "Shakuntala" more than a century ago. He was followed by Professor Wilson with his "Specimens of Ancient Hindu Theatre in 1827". This admirable work contains translations of six dramas, viz., "The Toy Cart", "Vikramorvasi", "Uttara Charita", "Malati Madhava", "Mudra Rakshasa" and "Ratnavali" and abstracts of 24 more. Monier Williams' translation of "Shakuntala" is a glorious monument of successful attempt to render Hindu ideas into English. "Mahavira Charita" has been translated into English by

... Ratnavali and "Nagananda" by Mr. Boyd. Translations of "Uttara Rama Charita" and "Malavikagnimitra" have also appeared from the pen of Professor Tawney of Calcutta.

Unfortunately little has been done in the present century in Hindi to popularise these famous productions. Only two dramas have yet appeared in Hindi, viz., "Sakuntala" by Raja Lakshman Singh and "Mudra Rakshasa" by Harishchandra. No apology is therefore needed for the publication of the present series.

The first gem of this string, as I have named it in Hindi, is one of the three plays attributed to Bhavabhuti whose reputation is only second to Kalidas". "It dramatises the history of Rama, the great hero (Mahavira), as told in the first six books of the 'Ramayan' but with some variations."

How far I have succeeded in my paraphrase I leave my readers to judge. This work was written during my stay at Benares twelve years ago and on my transfer from the place it was laid aside. A revision would have improved some of the renderings but with the present state of my leisure it is impossible. I shall, however, deem myself amply repaid for my pains if a glance over these pages gives my readers some idea of the original or actuates them with a desire to produce better and more faithful translations.

CAWNPORE:
22nd February 1898.

SITA RAM.

पहिली आवृत्ति की भूमिका

अवधपुरी सुखमाकलित जानहिं सबहिं सुधारि ।
...रायनि लस्यौ जहाँ अहह सुहावन वारि ॥
तहँ रह्यो कायस्थ कुल श्रीदिग्वरल उदार ।
श्रीरघुवरपदकमल महँ जाकी भक्ति अपार ॥
सियरघुवरपदकमलरत सम्भूत सीताराम ।
शशिनाम कवितानुगम धरन भूपरघनाम ॥
कालिदास भवभूति से भारत के कविराय ।
रह्यो आजहुँ देस में जासु बिमल जस छाय ॥
लखे जिनहिं रविशिश गलित जग के काव्य खद्योत ।
जिनकी रचनाओंहु छिप जगकविता सम होत ॥
तिनके नाटक काव्य के निजवरचरन प्रसाद ।
भाषाछंदन महँ रचे काशी महँ अनुवाद ॥
ताके श्रुति शशि भूमि सुसम्वत् अवधपुरी करि वास ।
कालिदास के काव्य को भाषा करी प्रकाश ॥
वीरचरित उत्तरचरित रचि भाषा सुख पाय ।
तासु प्रकाशन हेतु अब कहत विबुध सिरनाय ॥

य, नाटक भवभूति बनाई ।
श्रीरघुपतिलीला सब गाई ॥
धनुभंजन अरु सीयबिवाहू ।
प्रभुवनगमन सहित उछाहू ॥
शूर्पणखा रावण को करयो ।
ताहि के महँ कविवर सोइ बरन्यो ॥
रचि भाषा तेहि मतिअनुसारा ।
यह सोइ करहुँ लोकउपहारा ॥

जासु भगतवश श्रीहनुमाना ।
महाबीर कहि कहत जग जाना ॥
यह सोई महावीर रघुवीरा ।
धरे लोक हित मनुज शरीरा ॥
जो प्रभुकथा विदित जग माहीं ।
तेहि मन हरै भेद कछु नाहीं ॥
अक्षर प्रकृति भले जो होई ।
पढ़ै जानि प्रभुजस यह सोई ॥
समाधान हित रंचहु हानी ।
सुमिरि तुलसिदास की बानी ॥
"नाना भाँति रामअवतारा ।
रामायण सत कोटि अपारा ॥
कल्पभेद हरिचरित सोहाए ।
भाँति अनेक मुनीसन गाए ॥"
रुचिर काव्यरस जे जन जानहिं ।
यहि रचना अनूप ते मानहिं ॥
चित्तविनोद निज धर्महु जानी ।
मैं यहि बिधि हरिकथा बखानी ॥
पढ़ि नहिं सकत संस्कृत जोई ।
लहैं सु ग्रन्थअमियरस सोई ॥
कै जो मोह वस रहत भुलाने ।
पढ़ैं देखि यह ग्रन्थ पुराने ॥
समुझैं सुनैं रामगुनग्रामा ।
निजहि जानिहैं पूरनकामा ॥

कानपूर
फाल्गुन शिवरात्रि
सं० १९५४ } श्रीअवधवासी सीताराम ॥

नाटक के पात्र

मर्यादा पुरुषोत्तम और नाटक के नायक।
अयोध्या के महाराज और नायक के पिता
मिथिला के महाराज
साङ्काश्य के महाराज
केकय के महाराज
नायक के छोटे भाई

" " "

" " "

दशरथ के पुरोहित
नायक के विद्यागुरु
जनक के पुरोहित
प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर
विश्वामित्र का चेला
दशरथ का मंत्री
देवताओं के राजा
गंधर्वों के राजा
बन्दरों का राजा
बालि का भाई
बालि का लड़का
बन्दरों के सेनापति
एक बन्दर
दो गिद्ध
लंका का राजा
रावण का भाई
रावण का मंत्री
रावण का सेनापति

सर्वमाय	एक राक्षस
इत्तु	एक देवता
मातलि	इन्द्र का सारथी
सूत	कुशध्वज का सारथी
एक तपस्वी	
एक कंचुकी	
एक किन्नर	

स्त्री

सीता	जनक की पुत्री और नायक की नायिका
उर्मिला	नायिका की छोटी बहिन
कौशल्या	नायिका की माता
कैकेयी	भरत की माता
सुमित्रा	लक्ष्मण की माता
अरुन्धती	वसिष्ठ की स्त्री
श्रमणा	एक सिद्ध शबरी
लंका, अलका	दो नगरदेवियाँ
मन्दोदरी	रावण की रानी
शूर्पणखा	रावण की बहिन
ताड़का	एक राक्षसी
त्रिजटा	एक राक्षसी

सिपाही, चेरे, प्रतीहारी, सखियाँ, किन्नरी, इत्यादि

[illegible] नमः।

श्रीमहावीरचरितभाषा

प्रस्तावना

[स्थान—रङ्गमन्दिर का कुछ भाग]

(नान्दी)

क्रम विभाग से जो रहित स्वस्थदेव अघहीन।
नित्य ज्योति चैतन्य प्रभु ताहि नवाइय सीस॥

(नान्दी के पीछे सूत्रधार आता है)

सूत्र—आज मुझे आज्ञा मिली है कि ऐसा नाटक खेलो,

संयम मुख्य महान को जहाँ रहैं अति घोर।
बानी रहै प्रसादयुत अर्थ समेत कठोर॥
रहैं अलौकिकपात्र में जहाँ वीररस एक।
भिन्न भिन्न सो लखिपरै अति आधारविवेक॥

तो इसका अभिप्राय यह है कि महावीरचरितनाटक खेलना चाहिये, जिसको

ऐसे कवि रचना करी रहै जासु वश वानि।
कथा भानुकुलचन्द्रकी जग मंगलकी खानि॥

सो मैं हाथ जोड़ के निवेदन करता हूँ कि दक्षिण देश में पद्मपुर नाम नगर था जहाँ तैत्तिरीयशाखा के अवलम्बन करनेवाले, चरणगुरु, पंक्तिपावन, सोमयज्ञ करनेवाले पंचाग्नि, काश्यपगोत्र के, वेदपाठी सुप्रसिद्ध ब्राह्मण रहते थे। उन में से वाजपेयीजी

भाव श्रीकार्त मात्रा का भिन है सो मुख इत्यादि मूल

प्राचीन नाटक मणिमाला

[इ]स खबी दौड़ी में महाकवि भट्टगोपाल थे। उनके पौत्र और
[नील]कंठ और जातुकर्णीदेवी के पुत्र भवभूति नाम
[जि]न्हें श्रीकंठ की पदवी मिली थी,

श्रुति [illegible] सहित परमहंस गुनधाम।
[illegible] जासु गुरु योगि ज्ञाननिधि मान॥

उन्हों ने—त्रिभुवनलोकनयन जिन भाला।
[illegible] तेज प्रताप प्रकाला॥
यह [illegible] रघुपतिचरित सुहावा।
नाटक नहँ अति रम्य बनावा॥

इस अपूर्व ग्रन्थ का श्रीअवधवालीभूषणरजत लाला सीताराम
ने [illegible] सरल भाषा में अनुवाद किया है. इसे आप लोग
[illegible] इसे कृतार्थ करें; भवभूतिजी ने कहा भी था,

जो पावन रघुपतिगुनगाथा।
रच्यो आदि कविवर मुनिनाथा॥
तासु अंश मोरिहु तहँ बानी।
सुनैं सुचितमन पंडित ज्ञानी॥

(नट आता है)

नट—[illegible] लोग तो प्रसन्न हैं; पर [illegible] कभी देखा तो है
. इस से यह जानना चाहते हैं कि कथा का आरंभ कहाँसे है।

सूत्र—महात्मा कौशिक जी यज्ञ करना चाहते हैं सो वशिष्ठ जी
[illegible] महाराज दशरथजी के घर से अभी लौटे आते हैं और

दिव्य अस्त्र करि दान तासु वीरता जगावत।
जग मंगल के काज सीय सँग ब्याह करावत॥
कुलमुखवंश विध्वंसि करैं जग पूरनकामा।
अनुज सहित सो रामचन्द्र लाये निज धामा॥
नेवत्यो मिथिलापति मुनिराई।
करन यज्ञ पठयो तिन भाई॥

महावीरचरित्र से।

नाम कुशध्वज नृप सो आए ।
सिय ऊर्मिला दोउ लिए साथ ।

(दोनों बाहर जाते हैं)

पहिला अङ्क

[पहिला स्थान—सिद्धाश्रम के पास एक जङ्गल]

(रथपर चढ़े हुये दो कन्या समेत राजा और सूत आते हैं)

राजा—बेटी सीता ऊर्मिला आज तुमको चाहिये कि महामुनि विश्वामित्रजी को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम करो।

दोनों कन्या—बहुत अच्छा बाबा जी।

राजा—यह ऐसे वैसे ऋषि नहीं हैं। यह तो

यज्ञअग्नि चोथो मनहुँ पञ्चम वेद अनूप।
तीरथ जग विचरत फिरत धर्म धरे जनु रूप॥

सूत—महाराज सांकाश्यनाथजी, आपने बहुत ठीक कहा। विश्वामित्रजी से बढ़कर तेजधारी कौन होगा? त्रिशंकु को आकाश में रोकना, शुनःशेफ के प्राण बचा लेना, रम्भा को निश्चल करना, बड़े २ अचरज के काम इन्हीं इतिहासों में लिखे हैं।

प्रगट भयेउ जिन वेद तेज के परमनिधाना।
दीन्हो जाहि विरंचि अचल परमारथज्ञाना॥
सो विद्यानिधिसंग करत तुम कुलव्यवहारा।
रहि गृहस्थ, को धन्य आप सम यहि संसारा?

राजा—वाह सूत, वाह, बहुत ठीक कहते हो। यही महर्षि लोग हैं जिनके द्वारा वेद प्रगट हुए हैं। इनके दर्शन ही से कल्याण होता है।

एक बारहु भेंट तें हुवै सकल अज्ञान।
चिर थिराय दोउ लोक में रहै तासु कल्यान॥

हैं अवध देहि वचन तुरत अमित फल देत ।
निज वंश हित सौहृद निज जगत बड़ाई देत ॥

सूत—महाराज, कौशिकजी के किनारे सिद्धाश्रम नाम महर्षि की कुटी दिख रही है, चारों ओर हरे हरे झाड़ लगे हैं। वह देखिये महात्मा विश्वामित्र जी दो लड़के और साथ लिए आप से मिलने को आरहे हैं।

राजा—तो अब हम लोग उतरकर चलें। (लड़कियोंके साथ उतरता है। सूत, लड़कियों से कहदो कि आश्रम में न जावें।)

सूत—जो आज्ञा। (सूत एक ओर से रथ लेकर बाहर जाता है दूसरी ओर से दोनों कन्या समेत राजा बाहर जाते हैं)

[दूसरा स्थान—सिद्धाश्रम]

(विश्वामित्र राम और लक्ष्मण आते हैं)

विश्वामित्र—(आपही आप)

शुभकाज राजललाम हित करि अस्त्रमंत्र सिखाइये।
पैंहिं रघुकुलचन्द्र ब्याह सुधौल पर ठहराइये॥
करवाइये जग छेम हित शुभ चरित श्री रघुबीर सों।
परिणाम लखि सुख लहत चित अतिस्वार्थ कारज और सों॥

राजर्षि जनकजी को हमने कहला भेजा था कि आप आप ही यज्ञ कर रहे हैं, तौभी आचारके अनुसार आपको न्योता दिया जाता है, सो आप सीता और ऊर्मिला को कुशध्वज के साथ भेज दीजिये। उनकी भी प्रीति ऐसी है कि उन्होंने वैसाही किया।

दोनों कुमार—महात्माजी यह कौन है जिनसे मिलने को आप भी आगे बढ़ रहे हैं।

विश्वा०—तुमने सुना होगा कि निमि कुल के राजा विदेह देश में राज करते हैं।

राजत तिनके बंस महँ अब सीरध्वज भूप।
याज्ञवल्क्य सिखयो जिनहिं पूरन वेद अनूप॥

दोनों कुमार—जी हाँ वेही जिनके कुल में महादेव का धनुष पूजा जाता है।

विश्वा०—हाँ हाँ

दोनों कुमार—(कौतुक से) और यह भी अवश्य सुनते हैं कि एक कन्या ऐसी है जो माके पेट से नहीं जन्मी।

विश्वा०—(मुसकरा के) हाँ वह भी है। और

करत जाति सोहि यज्ञ नृप मख आगे निज सोइ।
अनुज कुशध्वज भूप सो रह्यो सहित सनेह॥

यह कुशध्वजो राजा है, इनके सामने विनय से रहना।

दोनों कुमार—बहुत अच्छा।

(दोनों कन्या समेत राजा कुशध्वज आते हैं)

राजा—(दोनों को देखके)

धारे तेज मुनीस कौन जाति इनहि परै।
लहे यज्ञउपवीत ए क्षत्रिय बालक दोऊ॥

सोहै हैं चूनत बानके पुंज दोऊ छिति पीठ कसे हैं तुनीरा।
ओढ़े हैं खाल रुरु मृग की अति पावन भस्म लगाये शरीरा।
मूँजकी डोर कसे कटि मैं तन बाँधे मँजीठके रंग को चीरा॥
अच्छकी माल कलाई पै हाथ मैं पीपलदंड गहे बटु धीरा॥

दोनों कन्या—ए कुमार तो बड़े सुन्दर हैं।

राजा—(आगे बढ़के) महात्माजी प्रणाम।

विश्वा०—भैया बड़े आनन्द की बात है कि तुम कुशलसमेत आगये। कहो तो,

करत यज्ञ निजवंशगुरु शतानन्द के साथ।
हैं निर्विघ्न कुशल सहित कै मिथिलापुरनाथ॥

राजा—तपस्वी पुरोहित समेत भाई की कुशल में क्या सन्देह है। जिसके भला चाहनेवाले आप ऐसे सिद्ध महात्मा हैं।

दोनों कन्या—महात्मन, हम तुम्हारे प्रणाम करती हैं

राजा—यज्ञभूमि तें हल हल जोतत निकसी महि सन जोइ ।
सो सीता यह, अयोनिजा सुता जनक की होइ ॥

विश्वा०—कल्याणि है ।

लक्ष्मण—(धीरे रामचन्द्र से) यह अचरज है कि कुमारी ऐसे जन्मी है ।

राम—(आप ही आप)

यज्ञभूमि सन प्रगटी सिय श्रुतिवाणी रूप ।
देहु हीत मोरे हिये निरखि सलोनो रूप ॥

राजा—महात्माजी,

ब्रह्मचारिके रूप में कौन दोउ राजकुमार ?
तेज पराक्रम धर्मगुन मनहुँ कीन्ह अवतार ॥

विश्वा०—महाराज दशरथ के लड़के राम और लक्ष्मण हैं।

दोनों कुमार—(आगे बढ़ के) प्रणाम, महाराज !

राजा—बड़े आनन्द की बात है कि महाराज दशरथ के लड़के हमने देख लिये (गले लगाके)

कैसे उपजै और कुल ऐसे दृगसुखकन्द ।
क्षीरसिन्धु हि सों भये कौस्तुभमनि अरु चन्द ॥

हमने यह पहले ही सुना था ;

ऋष्यशृंग जब विधि अनुरूपा ।
कीन्ह यज्ञ तब कोसलभूपा ॥
लहे पुण्यमूरति सुत चारी ।
अतुल प्रताप तेज बलधारी ॥

सो अब हम इतनोही असीस दे सक्ते हैं कि आपके आशीर्वाद से इनके सब मनोरथ पूरे हों। रघुकुल के लड़कों की उन्नति तो सिद्ध ही है।

उपदेश करत वसिष्ठमुनि जिन नृपन श्रुतिविधि कर्म में ।
जिन सरिस कोउ जग माहिं नृप नहिं प्रजापालन धर्म में ॥

आदिक्षत्र मनुबंस महँ जिन जनम लिय भूपन माहीं।
माहात्म्य तिन कर अगाध, तुम मन जान सो कैसे कहीं।
विश्वा०—जगपावन जस जाहि करत पुण्य जिन पुनीत।
तिनकी अस्तुति करनको तुमहीं धन्य सुजोग।

भाई संसारकी रीति यह है कि विश्राम करके फिर बातचीत करते हैं सो आओ इस विकंक की छाहँ में यहीं पर बैठें।

(सब चलकर बैठ जाते हैं)

(परदे के पीछे)

जय! जय! श्रीरामचन्द्र जी की जय! जगदीश की!

(सब अचरज से देखते हैं)

विश्वा०—यह उतथ्य के पुत्र गौतमकी धर्मपत्नी अहल्या है। इन्हींके शतानन्द हुए थे। इन पर इन्द्र का मोह हुआ। इसी से गौतम की स्त्री के सतबिगाड़नेवाले इन्द्र को अहल्या का जार कहते हैं। इस पर महात्माजीको बड़ा क्रोध हुआ और अपनी स्त्री को शाप दिया कि जा तू पत्थर हो जा। सो आज श्रीरामचन्द्र के तेज से इसके पाप छूटे।

राजा—क्या सूर्यबंशी लड़के का प्रभाव अभी से ऐसा अलौकिक है?

सीता—(स्नेह और अनुराग से आप ही आप) जैसा रूप है वैसा ही प्रभाव भी है।

राजा—रघुकुलमणि बलतेजपुनीता।
देखे अवसि सु रामहिं सीता॥
धनुभंजन महँ बल अधिकाई।
करते नहिं जो बरगुन भाई॥

(एक तपसी आता है)

तपसी—रावण का पुरोहित सर्वमाय नाम एक बूढ़ा राक्षस आया है। सो राजकाज से आप से मिलना चाहता है।

दोनों कन्या—अरे राक्षस!

दोनों कुमार—यही अवसरकी बात है।

राजा और विश्वा०—(देखके) अच्छा आवें। (चपला बाहर जाता है।)

(राक्षस आता है)

राक्षस—आयसुमान दसमुखकर नाना।
यदपि न बुधि मोह माना॥
मांगन हेतु सुता सुलखानी।
पठयो मोहि मिथिलाराजधानी॥

सो यहाँ मैं हूँ राजा को यह कहता हुआ पाया, उसके कहने से अब विश्वामित्र और कुशध्वजके पास आया हूँ। (इधर उधर टहलता है)।

राम और लक्ष्मण—(सीता और उर्मिला की ओर देख कर अलग अलग और आपही आप) यह कौन है जो अमृतकी सलाई की भांति आँखों को सुख कर रही है।

सीता और उर्मिला—(इसी प्रकार से उन दोनों की ओर अलग अलग) यह क्या है जो इसे देख मुझे इतना सुख मिलता है।

राक्षस—(आगे बढ़कर देख के) अरे यही सीता है। यह निःसन्देह महाराज की रानी होनेके जोग है। (आगे बढ़कर) ऋषि प्रणाम है, राजा कुशल से हो।

विश्वा० और राजा—आइए।

जाकी आज्ञा सिर धरत लसत मुकुट सिर नाय।
सुरपति हू, सोइ कुशल सन है लंकापुरराय?

राक्षस—स्वामी कुशल से है। महाराजने यह सनेसा भेजा है।
"धनकी नृपति लै पाइ के जग मई तनया एक भूप तुम्हारी।
इन्द्रहु पास जो रत्न रहैं सो मिलै हम कौं यदि चाह हमारी।
सो हम जाचत आपहि मांगव भूपनको जग रीति विचारी।
कीजिए बन्धु पुलस्त्यकेवंसको कीरति जासु सदा उजियारी"॥

सीता—हाय हाय राक्षस बिनती करता है।

ऊर्मिला—हाय क्या यही कहता है?

(राजा और विश्वामित्र सोचते हैं)

लक्ष्मण—भाई इसी से इनके साथ निशाचरों का राजा सगाई चाहता है।

राम—मैंने कन्या सँगाई विनय कहँ काहुहि डर नहिं शोक।
विधिप्रबोध किमि सो न कर जिन जीते त्रैलोक॥

लक्ष्मण—आप तो बड़ेही सुजन हैं जो जनन के बैरी निशाचर की भी इतनी बड़ाई करते हैं।

सुरतिय जिन नन्दनहिं कीन्ही सबै बिगारि।
मानुषवंशबैरी सबै अनरत्थहि जो मारि॥

राम—ठीक है, शत्रु होने से वह इस के जोग है कि हम लोग उसे मारें। पर बड़े तपस्वी, बड़े वीर, असाधारण बैरियों को साधारण मनुष्य की भांति नहीं मानना चाहिए।

लक्ष्मण—जिस ने वीरों का आचार भ्रष्ट कर दिया उसमें वीरता कहाँ है।

राम—भैया ऐसी बात न कहो।

है वीर शुद्ध कुलीन जो निज धर्म पन पर ले टरैं।
तेहि निन्दिये जनि कबहुँ, नहिं एकठाँ गुन सब लखियहैं॥
जिन खेल में जनु जीति लीन्हो कार्त्तवीर्यकुमार को।
सो राम तजि रावन सरिस कहु वीर एहि संसार को?॥

राक्षस—अजी क्या सोचते हो?

जहँ लगत वज्रप्रहार दारुन घाव बहु लखि परत हैं।
जहँ तोरि नन्दनफूल माल बनाइ सुरगन धरत हैं॥
जहँ देवपतिमातंगदन्तन चोट जनु व्यर्थहि भई।
सोई वीरवर पर महिसुता प्रिय सरिस नित मम सोहई॥

(परदे के पीछे हल्ला होता है)

[illegible]

राजा—महात्माजी किन स्त्रियों को आपने यज्ञ में [illegible] न [illegible] यहाँ सब डर के मारे चिल्ला रहे हैं।

(सब उठ खड़े होते हैं)

[illegible]—अरे यह कौन है ?

आनी के तार कपार चिरोइके हाड़न ताहि बजावति है ;
भूधर घोर के तोरन सों सो अकाशहि धूरि उड़ावति है
भूतन झोलिन लै कहुँ ओर सों रक्त की हाँक लगावति है
घोर भयंकर देह भरे यह कौन धौं काल सो आवति है

विश्वा०—यह सुकेततनया लखिय सुन्दासुर की जोय।
मात तनय मारीचकी नाम ताड़का होय॥

दोनों कन्या—बाबा इसे देख बड़ा डर लगता है।

राजा—डरो न बेटी।

विश्वा०—(रामचन्द्र की ठुड्डी छूकर) भैया इसे मार दो।

सीता—हाय हाय यही इस काम को थे।

राम—गुरुजी यह स्त्री है।

उर्मि०—सुना तुमने।

सीता—(विस्मय और अनुराग से) यह कुछ और सोच रहे हैं

राजा—वाह वाह क्यों न हो इक्ष्वाकुवंशी हो।

राक्षस—अरे दशरथ का लड़का रामचन्द्र यही है।

बिपुल ताड़का रूप लखि जाहि नेकु भय नाहिं।
मारन महँ तेहि नारि लखि कछु सकुचत मन माहिं॥

विश्वा०—भैया जल्दी करो देखो आगे कितने ब्राह्मण मारे गये हैं

राम—तो आप जानिए।

शोपलेश बिन नित्य रहि भये जो वेद समान।
पुण्य पापके विषय यहँ आपहि रहैं प्रमान॥ (बाहर जाता है)

सीता—हाय इनके ऊपर तो वह प्रलयके बवंडल की नाईं
ऐ आ रही है।

राजा—(धनुष उठा कर) अरे पापिन कहाँ रहु ;

कुशि०—अरे अब तो आज्ञा पाइहैं चले

लक्ष्मण—(मुसकाकर) देखिये अब आप कौन ;

ज्यों लाग्यो हिय छेदन तीरा ;
यों धरनि हैं विकल शरीरा ;
निकसत सन जलधार समाना ;
हारत रुधिर तजे सोइ प्राना ॥

दोनों कन्या—बड़ा अचरज है। बहुत अच्छा हुआ।

राजा—वाह वाह राजकुमार, कैसा कड़ा हाथ मारा है।

राक्षस—हाय ताड़का ! हाय यह क्या हुआ, लोका झूठी नित उतराई।

यह अपमान मनुज सन पाई ;
यहीं हाय रावन प्रभुताई।
जिन सुरपुरकर नाल निहारा ;
हाय न कछु बस चलत हमारा ॥

विश्वा०—यही तो श्रीगणेश हुआ है।

राक्षस—अजी हमारी बातका क्या उत्तर देते हो ?

विश्वा०—इस बात में

सीरध्वजहि समान कुलयुत होहि भाव है।
कुलके पुन्यप्रधान कन्या के पितु भूप सो ॥

राक्षस—और वह कहते हैं कुशध्वज आवैं।

विश्वा०—(आपही आप) दिव्य अस्त्र देने का अवसर यही है। मुहूरत भी अच्छा है। (प्रकाश) भाई कुशध्वज हमने महात्मा कृशाश्वजी की बड़ी सेवा की; तब उन्हों ने ऐसे दिव्य अस्त्र दिये जो मन्त्र से चलते हैं और जिनके मारने से सेना बेसुध हो जाती है। सो इस समय हम भैया रामचन्द्रजी को सौंपते हैं।

बरस सहस्रन तप किये ब्रह्मादिक इन हेत।
तब देखे ए अस्त्र जनु निज तप तेज समेत ॥

रघुकुल पर बड़ी कृपा हुई।

—अरे यह देवता क्यों दुन्दुभी बजा रहे हैं ये
।

—क्या देवता भी राजा के विरुद्ध बाण छोड़कर

—हाँ यह क्या है।

देखिकहैं जनु दिशा दिशि रंग जल पीते।
लखि अकाल जनु सांझ काल फैलत नभ जोती॥
चलत निरन्तर विज्जुछटा झलकत झलकारा।
हाथी वाजिहु और मनुज अरु तेज अपारा॥

मनहुँ भानु की जोति दुराई।
जरत किरन चहुँदिसि फैलाई॥
प्रबल तेज परताप प्रकासन।
निरखत आंखि दुखत की नासत॥

कन्या—चारों ओर बिजलियाँ चमक रही हैं, मा
काला पड़ता है।

—दिव्यास्त्रों का तेज भी कैसा प्रचण्ड होता है,
वृत्र और इन्द्र की लड़ाई याद आती है।

जबै इन्द्र अरि मानि हन्यो निज वज्र प्रचण्डा।
दानवपति उर लागत भये ताके सतखण्डा॥
ऐसेहि तबै करोरि विज्जु जनु नभ महँ छाईं।
मिलत नाथकों हाँसि रोषज्वाला की नाईं॥

—भैया रामचन्द्र इनको नमस्कार करके विसर्जन

काल अग्नि अरु वायु वरुण ब्रह्मा अरु धनपति।
रुद्र इन्द्र प्राचीनबर्हि आरे प्रभाव अति॥
मन्त्र सहित ए अस्त्र घोर तपबल की नाईं।
एकहु इन महँ सकै जगत सब नासि, बचाई॥

(परदे के पीछे)

बिनय करौं मुनिनाथ सों [illegible] ।
[illegible] ॥

विश्वा०—ऐसा ही होगा।

लक्ष्मण—दोनों छुपा हुई हैं।

तुलि आनहिं [illegible] ।
[illegible] ॥

(परदे के पीछे)

हम सब सब रघुनाथ कौशिक कहा है अब
निज भाई के साथ आवहु हम कहँ दीजिए ॥

दोनों कन्या—अहा देवता बोलते हैं, बड़ा अचरज है।

(परदे के पीछे)

हे विद्याओ

विश्वामित्र त्रिभुवन तोल
तिनसन लहि मैं सदों मुनीश ॥
होयहु प्रगट करहुँ जब ध्यान
रहहुँ, जाहु निज निज अस्थाना ॥

लक्ष्मण—भाई के कहने से कन्या अन्तर्धान हो गई।

राजा—महात्मा कौशिकजी आप [illegible] हैं आप को नमस्कार है।

जग महँ अतुल प्रभाव [illegible] ।
करि साहस जो यहँ करत [illegible] ॥
बिन जाने नहिं [illegible] ।
तुमहिं [illegible] ॥

इसे तो महाराज दशरथ के [illegible] नहीं जान पड़ता

जिनके लड़के पर आप की ऐसी कृपा है। इन लोगों को तो आपने कुछ न किया जो ऐसा आग्रह न किया।

विश्वा०—क्या अब भी आपको विश्वास नहीं है।

राजा—मैं ऐसा कब कहता हूं।

विश्वा०—तो सब,

सुमिरन हीं आवै निकट शिवप्रसाद सब जोय।
रामचन्द्र के भौंह लौं चाप प्रगट अब होय॥

राजा—बहुत अच्छा। (ध्यान करता है)

शतानन्द—(आपही आप) इन दोनों में कुछ और विचारा। महाराज! अभी कुशध्वज अब तक विचार करेंगे।

राजा—इनने हैं कहा आई जाहिं।

शतानन्द—इनका उच्चार किया। वह कहते हैं कि कुशध्वज जानैं।

राजा—ठीक है।

(परदे के पीछे हल्ला होता है)

सकल चल सब जनु चलो शंकरतेज उद्योत।
रामचन्द्रके भौंह अब चाप प्रगट सो होत॥

सीता—(मुँह फेर के) अब मुझे बड़ा डर लगता है।

विश्वा०—(राजा से)

ज्यों परबत चोटी परन कोपि नाग हठ चाप।
त्यों निज हाथ लगाइ सोइ॥

उर्मिला—भगवान करैं ऐसा ही हो।

राजा— बैंचत,

उर्मिला—(अति प्रसन्न और लज्जित सीता के गले लगाकर) बधाई है।

राजा—(आश्चर्य से) टूटत चाप॥

राक्षस—अरे इस पापी रामचंद्रका प्रभाव तो सब से बड़ा है।

लक्ष्मण—

ज्यों रविवंशविभूषन राम मह्यो निज हाथ सों शम्भुकोदण्ड

बालचरित्र की डोंडी बजाई नभो करि उमा कथी बहु रंभा ।
ऐसे दंपति को पूरि प्रभो [illegible] मंगल [illegible] ।
तो सबहीं न [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ।

राजा—(हर्ष से)

आज [illegible] दुर्लभ [illegible] ।
[illegible] तुम्हारा ।
मैं अपनी सब पद बहु स्यानी ।
कै हिय मानि कुमारी [illegible] ।

(शतानन्द आते हैं)

शता—यह क्या यह कैसी बात आप कहते हैं. हम तो आप के बराबर हैं।

राजा—नाथ लिये स्वामी भई सफल तुम्हार असीस ।
नाहिन कहँ हम सकिला अर्पन अबहिं मुनीस ।

कन्या—(आँसू भर के) अरे हम दोनों को भेजते ही गई ।

राक्षस—(आप ही आप) अब क्या देखता हूँ ।

विश्वा०—बहुत अच्छी बात है हम बहुत प्रसन्न हैं परन्तु और भी कुछ कहना है ।

राजा—कहिये ।

विश्वा०—तुम्हारे भी दो लड़कियाँ हैं सो हम भरत और शत्रुघ्न के लिये चाहते हैं ।

राक्षस—(अपही आप) देखते ही जंगल में रहता है तो भी क्षत्रियों का इतना पक्षपात करता है ।

राजा—इस में क्या विचार करना है हम तो आधीन हैं ।

विश्वा०—किसके ।

राजा—एक तो आप ही के ।

विश्वा०—और किसके ।

राजा—भाई सीरध्वज और शतानन्द के ।

विश्वा०—शतानन्द और कुशध्वज की ओर से कुशल ही है।

राजा—यह तो आप जानते ही हैं।

कोउ सुजान नाहिं मनु निमि कुल संबंध अनूप।
सीय और सम भाय जहँ मिल कल्यान स्वरूप॥

विश्वा०—बेटा शुनःशेफ।

(शुनःशेफ आता है)

विश्वा०—बेटा शुनःशेफ अयोध्या जाओ और वहाँ वशिष्ठजी हमारा यह संदेसा कहो। उनसे

मुनि स्वामि निमि गेह महँ कौशलपतिसुत चारि।
ब्याहौ सिखे होइ वंश की रीतिविधि पठवौ धारि॥

से आप सब ऋषियों को न्योता देकर महाराज दशरथ के जनकपुर आइए। और जब कुमार और जनक जी का यज्ञ ल हो जायगा तब गोदान करके कुमारों का ब्याह होगा।

(शुनःशेफ बाहर जाता है)

दोनों कुमार—(आपही आप) यह और भी अच्छी बात है।

कन्या—(दोनों) बहुत अच्छी बात है कि चारों बहिनें एक घर पड़ीं।

रावन—सुनते हो जी सुनो हमारी बात। तुमने यह लड़की को दे तो दी।

पौलस्त्य कुलभूषण दशानन सुता माँगन जानिके।
तुम कीन्ह आदर नाहु नाहि संबंध अनुचित मानिके॥
तौ और कोउ विधि बरबस अब यह सीय लंका जाइहै।
सुर सहित नृप तुम सकल बन्दी करन औसर आइहै॥

(परदे के पीछे शोर होता है।)

राजा—ए कौन हैं जो भीड़ के साथ दौड़ रहे हैं।

विश्वा०—सुन्दउपसुन्द के ए सुबाहु मारीच।
रावन के अनुचर दोऊ धर्मविनाशक नीच॥

[illegible] राम लक्ष्मण आगे [illegible], यह मैं चिन्ह जानते हैं।

दोनों कुमार—जैसी आज्ञा है। धनुष चढ़ाकर चलते हैं।

कन्या—अरे यह क्या है?

बालक—हाँ,

[illegible]।

[illegible]॥

सीता—भैया रामचन्द्र, लक्ष्मण, सावधान हो के इन राक्षसों को मारो। तुम को सपथ है।

विश्वा०—(कुमारों के हाथ पकड़के)

चल आवहु, सुध दीजिये रघुकुलतिलक उदार।

यह हमि हैं मेघनाद सम जिमि सर्पनिनाद॥

(सब बाहर जाते हैं)

इति

दूसरे अङ्क का विष्कम्भक

[स्थान लंका—माल्यवान के मन्दिर में बैठक]

(माल्यवान चिन्ता करता हुआ बैठा है)

माल्य०—हा, जब से मैंने सर्वनाद से सिद्धाश्रम का हाल सुना तब से

महा सिंह सों वीर मारयो सुबाहू।
हन्यो ताड़का को डर्यो नाहिं काहू।
जो मारीच को दूर ही सों हिलायो।
करै दुःख मो चित्त सो सूपजायो॥

फिर उन सब त्रिशों को एक ही क्षण में तत्यानास कर दिया तो उस में आश्चर्य क्या है।

जेहि त्यो जोरि विरंचि सुरथान तेज प्रबल प्रताप को।
कर धरत राजकुमार भंज्यो कठिन संकर चाप को॥

कुशिकसुत विश्वामित्र सब सौंपे अस्त्र की विद्या सही
सो पाइकै तेहि काल कुल सब विप्र जीवन सबै सही

पुनि मनोहि वै सोहही करि दिव्यास्त्रन ग्राम।
प्रगट कीन्ह कुलसीस त्रय होय सहित अपमान।

क्योंकि

करि कोप जन्हो तासु सो अपमान रहन मन कह्यो।
सो मह्यो देवन नित्त हूँ नहिं ताल कहूँ हमारो गह्यो।
तिन कुशिक सौं बहुरिन्ह मंगल पाय देखन लाग जौ।
सो चाहिं अजहुँ प्रकट नरदिग्विजयन विदित सौ॥

अरे क्या, शूर्पणखा आई?

(शूर्पणखा आती है)

शूर्प०—नाना की जय हो।

माल्य०—आओ बेटी बैठो। कहो राजा के यहाँ से क्या मिला है?

शूर्प०—सीता का ब्याह हो गया और महर्षि अगस्त्य ने चन्द्र के पास मंगल की भेंट में भाईन्ह अतुल भेजा है।

माल्य०—जो जो बड़े सामर्थ्य के हथियार संसार में हैं महर्षि लोग रामही को दे रहे हैं (सोचके)

विप्रअनुग्रह ब्रह्म हित सब ले प्रबल हथ्यार।
ब्रह्मतेज सह ब्रह्मबल होत अमेय अपार॥

शूर्प०—मानुष ही तो है तो कौन चिन्ता है।

माल्य०—बेटी ऐसी बात न कहो।

सो उपजो नरगेह यद्यपि तासु अद्भुत रूप है।
सो मनुज किमि सुरवृन्द गावत जासु सुजस अनूप
सुर मुनिन सन लहि शक्ति अद्भुत वस्तु साधारन ल
वरदानसमय विरंचि हू र हम मन कह्यो॥

और

[illegible] निज हित [illegible]
[illegible] को करि रारि विचार ॥

शूर्प॰—और क्या, तब मैंने रावण से पूछा कि मुनियों से [illegible] कि इन को क्या लेते हैं

रावण—सुनो, विश्वामित्र आदि [illegible] महान।
जिन्हें [illegible] जनक नृप [illegible] ॥
करि तप जोग रिझाइ ब्रह्म सों पाइ बड़ाई।
क्यों [illegible] नहिं [illegible] छिन महँ निखिल बड़ाई ॥

यह भी हो सकता है,

मान त्यागि यद्यपि कुलकुल कन्या सो माँगी।
तऊ रामहिं सो देन जनक कहँ लाज न लागी ॥
पर की बुद्धि पाइ [illegible] यह [illegible]।
नहीं कहो जगनाथ सो किमि रावन अभिमानी ॥

(प्रतीहार आता है)

प्रती॰—जिसे आपने सँदेसा लेके परशुराम जी के पास भेजा था वह यह ताड़पत्र लाया है।

(पत्र रखकर बाहर जाता है)

माल्य॰—(उठाकर पढ़ता है)

"स्वस्ति लंकाराज्यामात्य श्री माल्यवान को लौ: परशुराम ने महेन्द्र द्वीप से"

शूर्प॰—अरे यह तो प्रभु को नाईं लिखते हैं।

माल्य॰—(पढ़ता है) "महाराजाधिराज लंकेश्वर को अभिनन्दन पूर्वक। आगे विदित हो कि हमने दण्डकारण्यवासी तपस्वियों को अभय किया है। सो हमने सुना है कि विराध दनु आदि कई राक्षस वहाँ फिरते हैं। उनको मना करके हमारा हित और महादेव की प्रीति स्थिर रखिए

त्रिजगविजयम् के लेखे मन अज्ञान अपार ।

काहू तौ अस नि कहि है कुलपति निज सुखहार ॥ (हँसि)

शूर्प०—वह तो बड़े दर्प के साथ निकली हुई है ।

माल्य०—इस में कहने की कौन बात है ? परशुराम जी हैं न ?

जब जीत लिया यदि क्षत्र जननिक्षिप्त निज नहिं धारिकै ।
प्रभुता हैं सोइ पैठ निस्पृह होइ शान्ति बिचारिकै ॥
निर्ब्राह्मणि सब करहु क्षिति क्षत्र करि अब सो हम लख रहे ।
करहु अबहुँ काम बिचारि सोइहैं निठुर जो हम सब कहे ॥

(सोचता है)

माल्य०—ठीक.

कहहि न शंकरशिष्य है सो निज गुरुअनुसंग ।
प्रिय हमारहूँ है उभय जो जूझै दोउ संग ॥

ठीक है । इस में तो कोई जीते हमारा भला ही है । जो क्षत्रियों का नाशकरनेवाला जीते तो बिना उसे मारे उसका क्रोध क्यों शान्त होगा ; बस राम मारा गया और हमारा काम सिद्ध हो गया । जो राजकुमार जीते तो वह ब्रह्मर्षि को कैसे मारेगा । परशुराम की मुक्ति हुई तो चला ब्रह्म भी जोग से हर लेगा । यह और भी बुरा है ।

शूर्प०—कैसे ,

माल्य०—जामदग्न्य तो जङ्गल का रहने वाला है, वह जो रामचन्द्र को मारे तो फिर वह वैसाही रहा । और जो राजपुत्र उसे बहुत प्रसन्न करके उत्साहशक्ति से उसे जीते तो सब उसे विजयी कहेंगे । उसी समय देवता लोग उसको अधिकार दे देंगे । क्योंकि असुरजीतनेवालों को अपमान के साथ सदा क्रोध लगा ही रहता है ।

मथि दसकंधर मान लही कीरति जग जोई ।
क्षत्रियत्रास भरम कीन्ह हनि मखन सोई ॥

सो सुहृदनि को दुःख हरिबे को भल दृढ़ है,
सो अवसर जग माँहि सुपुरुष कीरति चाहैं।

सूर्प०—तो आपने कौन उपाय सोचा है?

माल्य०—परशुराम की भेंट कराऊँ।

सूर्प०—और उनके संग युद्ध में ठीक हो है?

माल्य०—इसका भी कुछ उपाय करेंगे।

जो मोहि जगदग्नि जन मोह जब [illegible]
तो परनाल न सकल हन परशुराम की हारि।

तो अब चलो मिथिला जाने के लिये परशुरामजी के उपराने को महेन्द्रगिरि चलैं। वहीं परशुराम से मिलेंगे;

अनिहौं सुजस महा अमल आनंद परम गंभीर;
सकल सुखद जनु पुन्य की रासि बीर मति धीर।
अति विशुद्ध तप तेज सों मिल प्रभुत्व परताप;
दरसन अद्भुत तेज बल सुनि आवत भव पाप॥

(दोनों उठ कर चले जाते हैं)

इति।

दूसरा अङ्क

[पहिला स्थान—जनकपुर राजमन्दिरमें श्रीसीताजीके महलका एक कमरा]

(परदे के पीछे) अरे ओ विदेहराज के दास दासियो; राम-चन्द्र कन्या के महल में घुसा बैठा है, उससे जाके कहो तो;

कीरति त्रिलोक जो गर्वित होय महेस समेत पहार उठाया।
सोइ दशकंधर को अभिमान जो खेल सों आवत सौंह नसाया;
ऐसहुँ हैहय के बलवान नरेस को कोपि जो मारि गिरावा;
काटि के डार से बाहु हजार जो पेड के ठूंठ समान बनाया॥

भुजनि के भूमि दै बार इकीस जो छत्रियवंस समूल सँहार
रघुवंश को हँसत के फिरि बालक जोरि के क्रोध प्रचार
भृगु सिर हैहय सहाय सहित जो नायक के पितुहूँ को पछारा
सो फरसौ कुठार कर, अंगन ज्वाल है अति कोप अपारा

(जनाने से राम सीता और सखियाँ आती हैं)

राम—कैसे आनन्द की बात है।

नहिं देख्यो बिन गुरु शम्भु के शिष्य प्रधाना।
भृगुकुलमनि सौन्दर्यहीन के परम निधाना॥
आवत देखत मोहि, इहाँ लज्जा सब त्यागी।
उर लखत मोरी मोहि नेह बल बरजन लागी॥

सीता—अरी सखियो यह क्या हुआ।

सखियाँ—कुँवरजी आये मन।

राम—देखो हमें इनसे मिलने की चाह बड़ी है। रोकना अच्छा नहीं लगता। किसी के उत्साह को रोकना न चाहिये।

सखियाँ—हाय परशुराम को तो हम लोगों ने सुना है कि उसने बार बार संसार में घूम के क्षत्रियों का नाश करके अपना मनोरथ पूरा किया था।

राम—क्या एक काम से उनका महातम कम हो सकता है नहीं तो

निज बाहुबल रनजीति हैहयनाथ आदिहि जस लियो।
पुनि भूमि बार इकीस महि यह लोक निरक्षत्रिय कियो।
हयमेध कीन्ह समेत महि निज गुरू कश्यप को दई।
महि सिन्धु सन तिन कारन हेत हटाय जल सथल लई॥

(परदे के पीछे)

तजि धीर दुख सन त्रास वस सब द्वारपाल निहारहीं।
जेहि ओर चितवत रकत सूखत देह वदन बिगारहीं॥
परिवार हा! हा! करत सब चहुँ ओर सन चिल्लात हैं।
किये क्रोध भृगुपति हाथ भीतर जात हैं॥

राम— ऐसे ही महर्षि [illegible] है [illegible] की [illegible] लिखी है। यह [illegible] है, [illegible] और यह [illegible]

([illegible] से [illegible] कर चलता है)

सखियाँ— अरी आली, कौन से [illegible] हाय [illegible] के सब [illegible] खिला रहे हैं। कुमा-रीजी [illegible] से तुम्हीं कहो।

सीता— आर्यपुत्र आगे बढ़ रहे हैं, चलो उनको लिवें।

(चलती हैं)

[दूसरा स्थान—श्रीसीताजी के महल का दूसरा कमरा]

(आगे पीछे राम सीता और सखियाँ आती हैं)

सखियाँ—देखिए कुँवरजी, कुमारीजी घबड़ाई हुई आरही हैं।

राम—(प्रेम और दया से लौट के) देखिये यह बहुत घबड़ाई है आप लोग समझाइये।

सखियाँ—सखी तुम तो सदा जब हम से कहती थीं कि कुँवरजी सुर असुर जीतने की सामर्थ रखते हैं, इन में तीन लोक के मंगल करनेवाले जय के लक्षण हैं, तो तुम्हारा मुँह खिल जाता था। अब वह जय करने जाते हैं तो क्यों रोकती हो।

सीता—हाय, यह सब क्षत्रियों का नाश करने वाला परशु-राम है।

राम—प्यारी तुम सुख से लौट जाओ।

सुन्दरताइ निचोरि धरी जनु मंजु मधूक के फूल के रंगा।
साहस की घबराहट से जनि काँपैं प्रिया तुम्हरे सब अंगा।
डोलत हैं उलास भरे भौंह, कन्दुक से उभरे उर संगा।
भूटी ही पास लौं मोरी प्रिया तब हूजे नहीं [illegible] के संगा॥

परदे के पीछे, हे हे दासियो दशरथ का लड़का कहाँ है?

सखियाँ—हाय हाय इन्हीं को बुलाती हैं।

राम—यह इसी भयंकर कार्य के करनेवाले की बोल चाल को देख कर रहीं हैं जैसे बादल की गरज होती है।

सीता—हा, कहाँ (धनुष पकड़ के) आर्यपुत्र जब तक सखियाँ न आजाएँ, आप न जाइये।

सखियाँ—प्यारी सखी ने निज से लाज छोड़ दी।

राम—(आप ही आप) स्नेह तो रोके लेता है (प्रकाश) तो हम धनुष छोड़ देंगे

(धनुष के छोड़ने के हेतु हाथ खींचा इत्यादि फिर पकड़ता है)

सीता—तो तुम्हें हम ज़ोर से पकड़ेंगी।

राम—हाय हाय!

तप को बल की राशि क्रोध कीन्हें इत आवत।
वीररसागम हर्ष मोहि तेहि ओर बढ़ावत।
रोकत है इत मोहिं किये चेतन जनु मन्दा।
हरिचन्दन सम लगत अंग सियपरस अनन्दा॥

सखियाँ—अरे यही क्षत्रियों का शत्रु है परसराम, सूरज की जोति सा चमकता परसा लिए है, आग की लव की तरह ऊपर जटा लपेटे है, भारी टांगों को बढ़ा बढ़ा कर ऐसा चलता है मानों धरती घबड़ाई जाती है। यह तो आ पहुँचा।

राम—त्रिभुवन के इक वीर यही भृगुपति मुनिराई।
दरसत अमित महातम तेज साहससमुदाई॥
चलत मनहु मिलि एक रूप तप तेज अखंडा।
भयेः सिमिटि एक पिंड वीररस मनहु प्रचंडा॥

(अचरज से) पावन वेद नेम व्रतधामा।
कीन्हे जगत भयंकर कामा॥
घोर मंजु गुन मूरति माहीं।
वेद सरिस लखाहीं॥

राम जी

बने भयंकर भाँति बहुत [illegible]
किये कोप जहाँ त्रिपुरासुर [illegible]।
[illegible]
[illegible]।

और स्वच्छन्द [illegible] है
हाथ गहे हैं कुठार कठोर, जटा [illegible];
काँधे [illegible] है बाँधे जटा [illegible]।
हाथ में बान कलाई पै [illegible]
[illegible] है इक संग लिये [illegible]।
प्यारी यह भी बड़े हैं ज्ञानी [illegible]।

सीता—हाय हाय यह तो पहुँच गये। (हाथ जोड़ के) आर्य-पुत्र मैं क्या करूँ। हाय साहस न करो।

राम—प्यारी—है यह मुनि जो वीर महाव्रत।
औरहु यह मोरे मन भावत॥
क्यों काँपहु तुम डर बस भारी।
तजहु कंपन तुम [illegible]॥
कैसो यदपि सुभट जगमाहीं।
यदपि गर्व बल बाहु भुजाहीं॥
तदपि यहि कर बल जाँचनहारा।
जानु मोहि रघुवंशकुमारा॥

(परदे के पीछे) इस राम लड़के ने कैसी धृष्टता की है।

शान्तचित्त नित रहत लोकहित कृपानिधाना।
जो तोरत प्रभु डरयो नाहिं शंकर धनुबाना।
कै न सुन्यो [illegible] तारक जिन मार्यो।
कै जानत नाहिं मोहि गुरु सम शिष्य पियारो॥

हमारे शान्त रहने का बुरा परिणाम यही हुआ

फिर छत्रिकुल क्षत्रियन पावा ।
अब फिर मिस हम धनुष उठावा ॥
तू बस करै चाहत अब जोई ।
तुम्हें आज मिल कारन सोई ॥

परशु०—क्षत्रिन तेज तपवारिन जोन अभिमान जनावत ।
जग प्रसिद्ध करि गोद सो मुनि मोंहि हेरत आवत
लखे लिखे धनुबान जात मुनि काज करन को ।
फरकत है मो हाथ गहन हित कपटि चरन को ॥

परन्तु आचार का यहाँ कौन काम है ।

(पर्दे के पीछे) अरे क्षत्री, दशरथ का लड़का राम

राम—अजी हम यहाँ हैं । इधर आइए ।

(परशुराम आते हैं)

परशु०—वाह, राजकुमार, तू पूरा इक्ष्वाकुबंशी है ॥
मैं मोहि ढूँढ़त वचन हेत तू गर्व जनावत ।
सांचे क्षत्रिय तेज भौंह मेरे चलि आवत ॥
जिनहि मत्त गजपाठ सिंह भांति ज्यों डारै ।
जो गिरि से गजकुम्भ वज्र सम नखन बिदारै

सखियाँ—भगवान कुशल करै यह क्या कहते है ।

परशु०—(आप ही आप) राजकुमार तो बड़ा सुन्दर
सिर हिलत पांच शिखंड मंडल नवल सुघड़ शरीर है ।
आकार प्रियलक्षन सहज जनु लसत रुचिर गँभीर है
मनमोहनो यह रूप निरखत विश्वलोचनचोर है ।
तेहि मारिये अब अग्नि हा ! यह धीरनेम कठोर है ॥
(क्रोध) सके नहीं जगवीर आजुलौं जो धनु तोरी ।
ता के टूटत क्रोध बाँह मेरी अब मोरी ॥
खंडपरशु कहि लोक गहत जेहि शिवहि पुकारै ।
सो यह परशु कठोर कंठ पर तब कसि मारै ॥

सखियाँ—हाय हाय यह तो बिगड़ गये।

राम—(बड़े लाज और कौतुक से देख के) महात्माजी यह वही परशु है जिसे श्रीमहादेवजी ने हुलास [illegible] के लिये आपको परिवार समेत कार्तिकेय के जीतने पर प्रसन्न होकर दिया था।

सखियाँ—कुमारी जी देखो कुमारजी के मन में [illegible] हुआ है पर अपनी वीरता से परशुरामजी के [illegible] करने की रीति के देखो नहीं जान पड़े हैं।

सीता—(अचरज से परशुराम के ओर देखती है)

परशु०—(आपही आप) यह अचरज है कि यही तो बात ही दूसरी है। महिमा और सौम्य कैसा अद्भुत है! सौजन्य और वीरता साथ ही है। (प्रकाश) राम, हाँ यह वही परशु है।

सखियाँ—कुछ तो धीरे हुये।

परशु—जानत सकल अस्त्र व्यवहारा।
जब जीत्यो गन सहित कुमारा॥
होय प्रसन्न नाथ उर लीन्हा।
तब यह परशु मोहिं गुरु दीन्हा॥

राम—(आप ही आप) इतने पर भी यह कहते हैं, बड़ा गर्व इनको है (प्रकाश) इसी से तो महात्माजी तीनों लोक में तुम्हारी वीरता प्रसिद्ध है।

जेहि सन कंठिनाथ भगवाना।
खंडपरशु कहि सब जग जाना॥
लहि सोइ तारकारिहुहि हराई।
परशुराम पदवी तुम पाई॥

क्योंकि—उत्पत्ति है जमदग्नि सन गुरु चंद्रमौलि भगवान है;
बल तेज को कहि सकत कर्म विदित सकल जहान हैं॥
महि दीन्हि सात समुद्र बेरी, जानि मानिय दान को।
है सत्य लौकिक कौन गुन तव ब्रह्मतेजनिधान को?

सखियाँ—कुँवरजी कैसी बातें कह कह कर मना रहे हैं।

परशु०—है राम शोभा धाम, जिन कुलन कुल अभिराम।
मेरे हिये तोहि देखि, अब प्रीति होति विशेखि॥

और सुन लो, परशुपानि किय जहँ कुठार प्रहारा।
छेद्यो जेहि शर मारि कुमारा॥
सो उर अतुल वीर लखि पुलकित।
आवत यहाँ कहीं सांचो नित॥

सखियाँ—कुमारी जी देखो तो कुँवरजी कैसे तेजधारी हैं तुम तो सदा उलटा ही समझती हो।

सीता—(आँसू भर के सांस लेती है)

रानी—महाराज जी मैं तो जिस के लिये आप आये हैं उसके निकट हूँ।

सखियाँ—कुँवर जी का विनय वीरता के साथ कैसा अच्छा लगता है।

परशु०—(आप ही आप) अरे यह क्षत्रिय का लड़का कैसा सुजन है। अपने और पराये गुणों का कैसा समझना है और उन का कैसा आदर करता है। विनय इतना बढ़ा हुआ है कि उस के आगे अहंकार छिप सा गया है।

यद्यपि न मोहिं लौकिक नर मानत।
मेरे गुन चरित्र सब जानत॥
तउ बोलत निधरक तजि त्रासा।
यद्यपि विनय मन करत प्रकासा॥
अहै कौन यह बालक वीरा।
गुन महिमासन रच्यो शरीरा॥

बड़ा अचरज है

त्रिभुवन अभय देन के काजा।
यहि कों देह लखिय सब साजा॥
ज्ञान विनय बल धर्म समेता।
श्रिय सात्विक गुन तेज निकेता॥

यह जो, अखिलेश यह रूप अजानको हिय प्यारा।
वेदवखानत सच्चिदानंद नेति अनादि।
रामचन्द्र के दर्शन सुलभ जो लावहु देरी।
नहिं प्रभु प्रभु राखि गुरु के काज देरी॥

(प्रकाश) आप लोग राजकुमारी के आनन्द लें।

राम—, आप ही आप ; ठीक है।

(परदे के पीछे)

आवत है यहि विधि जहें तेरि कलपतरु !
शतानन्द कुमारि लहि मनु पौधा निज हाथ॥

सखियाँ—कुमारी जी स्वामी आपकी आशिषें मांगत खड़ी।

सीता—भगवती लक्ष्मी की देवी है तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ। मंगल करना।

(सखियाँ बाहर जाती हैं)

परशुराम—यह पंडित नृप जेहि बहुत दिन।
शतानन्द आंगिरस पुरोहित॥
याज्ञवल्क्य जेहि मातु पितामह।
सो वहि नृप कहँ देहु पठाना॥

अच्छा तो हैं पर क्षत्रिय ह्याँलोगों में हमारे बेटा होते देख जानते हैं।

(परदे के पीछे)

एक—तो अब क्या करना चाहिये।

दूसरा—महात्मा—

आवो जो राहुल हिय यह लखि कर विविधत कीजिए।
पुनि वैद्य की नालि यहि नसुपर्क लोचन दीजिए॥
जो बैर सारि कृपाहुलस निज आज तेहि छेड़न कहैं।
तौ आणि पूँछन श्रीम यहि कौतुक निज अवसर लहैं॥

राम—यह आप लोगों की इच्छा की बात रहे है।

परशु०—तुझ को नहीं

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] दुःख अपार ॥

राम—जान पड़ता है कि आप हम पर बड़ी तरस खा रहे हैं।

परशु०—अरे क्या तू [illegible] ?

[illegible] ।
[illegible] ॥

राम—महाराज आप को बड़ी कृपा आ रही है।

परशु०—अरे यह तो हम पर भी वाक छड़ाता है। अरे क्षत्रिय के बच्चे तू अभी बच्चा है और तेरी माई बहु है इसी से हम को बड़ा तरस लगता है।

सब जानैं याहि लोक महँ गावैं रचि रचि गाथ ।
परशुराम निज मात को काट्यो सिर निज हाथ ॥

और सुन रे मूढ़

क्षत्रिय की जाति औ बिरोध मानि वालेहू को
पेट सन काटि लंड लण्ड करि डारे हैं।
राजन के बंसन इकीस बार कोप करि
देश कहूं ओर ढूंढि हेरि हेरि मारे हैं॥
बैरिन के लोहू के तड़ाग मैं असनान करि
बोरिकै बुझाये निज क्रोध के अँगारे हैं।
रक्त ही को तर्पन पितान्हि दीन्ह कौन मूढ़
जानत सुभाव और न चरित्र हमारे हैं॥

राम—निर्दयी हो के मारना तो पुरुष का दोष है उसमें कौन डींग मारने की बात है।

परशुराम—अरे क्षत्रिय के लड़के तू बहुत बकता है।

कहि महान् बहु सौंहि मोहि आजु यह लीन्हा,
करि प्रहार शिशु प्रथम नींव करिहैं निज दीन्हा।
मेरे एकहि बाण चलनु छाँड़ि जस जाति हैं।
सिखत सीखि मोहि तहँ [illegible] बहुरि का जाति हैं॥

(जनक और शतानन्द आते हैं)

जनक और शता०—भैया रामचन्द्र, इधर आ, [illegible] हो जाओ।

राम—हाय अब तो हमें इन लोगों की आज्ञा पर चलना होगा।

परशु०—कहिये आंगिरस जी कुशल से हो।

शता०—विशेष कर तुम्हारे दर्शन से। और,

आये जो पाहुन पूजनजोग हैं बैठिये नाथ करें सतकार।

परशु०—पुरोहित जी, वेदपाठी, यज्ञकरनेवाला, याज्ञवल्क्य का शिष्य बड़ा भलामानुस सुना जाता है। पर हम अतिथि सत्कार नहीं मांगते, हम पाहुने नहीं।

शता०—पौढ़ि कुमारी के मन्दिर में तुम श्रेष्ठ कियो गृहधर्म हमारा।

परशु०—हम तो वनवासी ब्राह्मण हैं हम महाराजाओं के घर की रीति क्या जानें।

राम—(आपही आप) जिसने संसार को दान कर दिया उसे राजाओं से गर्व जनाना कैसा अच्छा लगता है।

जनक—आहत हैं हमरे केहि कारन छेड़त हो रघुवंशकुमारा।

(कंचुकी आता है)

कंचुकी—कंकन छोरन रानि मिली वर सेजिये नाथ न लाइय बारा।

जनक और शता०—भैया रामचन्द्र तुम्हें तुम्हारी सास बुला रही है, जाओ।

राम—महात्मा परशुराम जी देखिये बड़ों की आज्ञा यह है।

परशु०—कुछ दोष नहीं है। लोकरीति कर लो। जाओ सासुओं से हो आओ। पर वनवासी नगरों में बहुत देर तक नहीं ठहरते इस से हम जाना चाहते हैं विलम्ब न करना।

राम—बहुत अच्छा।

(सुमन्त्र आता है)

सुमंत्र—वसिष्ठ और विश्वामित्र जी आप लोगों को परशुराम जी समेत बुला रहे हैं।

और सब—दोनों महात्मा कहां हैं?

सुमन्त्र—महाराज दशरथ के डेरे में।

राम—बड़ों की आज्ञा से मुझे जाना पड़ता है।

सब—अभी वहीं चलें (सब बाहर जाते हैं)

इति।

तीसरा अङ्क

[स्थान—जनकपुर महाराज दशरथ का डेरा]

(वसिष्ठ, विश्वामित्र, परशुराम, जनक और शतानन्द आते हैं)

वसि० और विश्वा०—परशुराम,

इह जो पूर्व लौं यज्ञ कराइ प्रसिद्ध जु इन्द्रके मित्र पियारे।
राजत जो यहि लोक के बीच सुरेस समान प्रकासमें सारे।
लागे रहैं हम से जन जासु जु विश्व मैं है मनु सों पद धारे।
वृद्ध नरेस सों पुत्र के मोह सों मांगैं अभै कर जोरि तुम्हारे॥

सो इस व्यर्थ झगड़े को छोड़ो।

रचा जाय मधुपर्क और घी में पाकैं अन्न।
सोतो आये सोतिथ्य कर हम सबन प्रसन्न॥

परशु०—जो आप लोग कहते हैं उस में मुझे इतना ही कहना है कि क्षमा करने में बार न लाता जो राम ऐसा वीर न होता। आप देखैं तो,

हैं यदपि बालक राम, है जगविदित कर्म दिखाइकै।
पुनि परशु घर कवमौन साध्यो हानि पर मन लाइकै॥

यह जानि सिय, को गुरु न मानत, सत्य बात न क्यों कहौ ;
नहिं शुभ यह कहुँ बीर कोउ पुरुषार्थ सन परिभव लहौ ॥

दोहा

जो जन रसत हुलसत फिरत जानत है सब भेद ।
मिलै जो तेहि संजोग सों कछु निन्दा को खेद ॥
कहत फिरत यक एकसों मांहि सकल संसार ।
रुकै न काहिहु वचनसों तेहि कर लोकव्यवहार ॥

वसिष्ठ—ऐसा कष्ट क्या। जनकजी इस आयुष्यशालिका को लिये लिवेंगे। परशुराम जी तुम श्रोत्रिय हो, तुम को तो पवित्र मार्ग पर चलना चाहिये। तुम तो वनवासी तपस्वी हो तुम को चाहिये कि मैत्री करुणा और देखा ही जो भावना है उनको पाल डालो जिस से चित्त शुद्ध हो राग और प्रकाशमान हो, शोक से रहित हो सुख पावें और परशु को रख दो। जब चित्त शुद्ध हो जाता है तो ज्ञानमय नाम ब्रह्मज्योति का ज्ञान हो जाता है जिस से फिर किसी प्रकार का विपर्यय चित्त में नहीं आता और जिस से अन्तःकरण में पूरी सामर्थ्य आजाती है। ब्राह्मण को यही करना चाहिये। इस से पाप और मृत्यु के परे हो जाता है। तुम तो अब तपस्या भी कर रहे हो। देखो तो,

गंगा स्वर्ग की लखन, सुधाजित बूढ़ा राजा ।
लोमपाद नरनाह सहित निज जानि समाजा ;
जनक करत नित यह पढ़ै उपनिषद् सारे ।
याचक हैं यहि समय राम के काज तुम्हारे ॥

परशु०—ठीक है। परन्तु,

कैसे देखौं जायके बिन त्रिशूल उखारि ।
गुरु देव त्रैलोक्यपति युवतिय शैलकुमारि ॥

विश्वा०—जो तुम को गुरु का इतना विचार है तो जो तुम कहते हौ सो ठीक नाहिं क्योंकि,

भृगु वसिष्ठ औ अंगिरस ये त्रिषि सब श्रापि तीन ।
तुम भृगुवंशि इसलिए यह यह आंगिरस प्रवीन ।

परशु०—करिहौं प्रायश्चित्त मैं करि अपमान तुम्हार।
पै न धर्म निज छाँड़िहौं गहि निज हाथ हथ्यार॥

और भी— मुनिहु सन प्रिय अस जन ज्वाला।
राखब निज जन कर नित माला॥
तुम सब अरहु, बाँह यह मोरी।
जहँ फुंकरी समर महँ डोरी॥

विश्वा०—(आपही आप)

यह सब महिमा करि प्रगट परशुराम की बात।
छिन उपजावत आचरज हिय नित बेधत तात॥

परशु०—सुनो महात्मा कौशिकजी,

गुरु वशिष्ठ नित ब्रह्म में रहैं लगाये ध्यान।
बीरन के कुल धर्म में तुमही गुरु प्रधान॥
भृगु के उत्तम वंश में लह्यो जन्म जग जोय।
सो कर लीन्हों शस्त्र तेहि इहाँ उचित का होय॥

वशिष्ठ—(आप ही आप)
है स्वभाव सन यह असुर, गुन सन यदपि महान।
महिमा लहि मर्याद तजि, जगत करै अभिमान॥

विश्वा०—भैया हम यह कहते हैं।

तुम एक के अपराध से तजि धीरमति चित, कोपि कै।
बिन काज क्षत्रिय जाति मारी व्यर्थ ही प्रण रोपि कै॥
द्विज बीस हू के छत्रि इकइस बार जग सब छानि कै।
संहारि रोक्यो क्रोध पुनि मुनि च्यवन कहनो मानि कै॥

परशु०—पिता के बध से जो क्षत्रियों के मारने का बड़ा काम मिला था उसे तो मैं छोड़ बैठा इस में क्या कहना है।

वज्रखंड के सरिस परशु यद्यपि अति प्यारा।
बन्यो छत्रबध छाड़ि ईंधनै रा।

रुद्र सरिस कोदंड जिन्ह कति नीरद नाला ।
आगि सरिस विरञ्चि ज्यों लौ बरै समाना ॥
बहुदिन बीते नाहिं उपजत आजेक तुमि बातो ।
छको परशु को नवल जीव को आजि दुबानी ॥
फिरि बन लरिस निमाकि उपन क्षत्रियकुल बाढ़ा ।
हमरि आजु लोहू कैरन हैं बहुदिन जनु डाढ़ा ॥

राम का सिर काटने का एक और भी कारन है । अब तो,

यह बालक कीन्हेसि चंचलपन ।
काटि तासु सिर मैं जैहौं बन ॥
रहैं अबै रघुनिमिकुलराजा ।
फिरि न काहु कर होइ अकाजा ॥

शता०—किस की इतनी सामर्थ्य है जो हमारे प्यारे यजमान राजर्षि विदेहराज की परछाईं भी लाँघ सकै । दामाद के छूना तो दूसरी बात है,

याहि घर के आचरन नित रहे धर्महितलागि ।
बहुदिन से तहँ रहत ज्यों गार्हपत्य की आगि ॥
सो बैरी के हाथ सों जौ पावै अपमान ।
तौ हम धिक ब्रह्मण्य धिक् धिक् अंगिर सन्तान ॥

विश्वा०—वाह, भैया गौतम, वाह, राजा सीरध्वज तुम ऐसा पुरोहित पाके धन्य है !

निधन होइ जिनसे नहीं डिगैं राज नहिं तासु ।
जिन नृप बल रक्षा करत तुम पंडित द्विज जासु ॥

परशु०—अजी गौतम तुम्हारे ऐसे कितने क्षत्रियों के पुरोहित ब्रह्मतेज से कूदे थे । पर संसारिक तेज तो अलौकिक तेज के सामने बुझ से जाते हैं ।

शता०—(क्रोध से) अरे बैल, निरपराध क्षत्रियों का वंश नास करनेवाले, महापापी बुरी चेष्टावाले नीच काम करनेवाले,

वेदविरुद्ध चलनेवाले चाबुक पतित, धर्म छोड़े, तू हम के भी विलौती बृता है। क्यों रे तू भी अपने को ब्राह्मण कहता है यह है ब्राह्मण का काम ?

कादर मातन्शील, सबन की बुधि छोटिहो।
यह करत अनरीत, हनत ब्रह्महत्या सारिस॥

परशु०—क्यों रे अब नगाड़े वाले तुच्छ क्षत्रियों के पुरोहित, क्यों रे अहिल्या के पूत हम नीच कहाँ हैं ?

शता०—अरे नीच पापी भृगुकुल के कलंक

क्षमा करैं गुरु और नृप क्षमा अधिक दिन माहिं
शतानन्द यहि अधम को क्षमा करै अब नाहिं॥

(इतना कहकर कमंडल से पानी हाथ में लेता है)

वसिष्ठ—अरे कोई है भाई, मनाओ, मनाओ। अरे यह तो पहले से हाँफी आग की नाईं क्रोध की आग से शतानन्द का ब्रह्मतेज प्रचण्ड हो रहा है।

शता०—(जल्दी से शाप के लिये पानी लेके) देखैं आपलोग

तुम्हहिं बधन चाहत यह पापी।
तेहि बेगहि करि क्रोध सरापी॥
करौं वायु सँग मनहुँ कृशाना।
खल कुलहि अब छार समाना॥

(परदे के पीछे) यह आप क्या करते हैं, क्षमा कीजिये। आप की तपस्या का प्रबल तेज ऐसे पर नहीं पड़ना चाहिये जो आप के घर आया है।

सखा बन्धु बाम्हन गुनी आयो है नव गेह।
ताहि विनाशन चहत तुम कौन धर्म कहु एह ?
छाड़े जो मर्याद निज लहै शास्त्र महँ बोध।
क्षमी ताहि सुधारिहैं, आप करिय जनि क्रोध॥

वसिष्ठ (शाप का पानी गिरा कर) भैया शतानन्द देखो

जो तुम्हारे समधी महाराज दशरथ आप कहते हैं, और यह भी तो सुनो।

ह्वै है मंगल काज मैं हम किमि अपमान।
करौ शांति आथर्वनि संग जल मैत्रविधाना।
सामवेद के मंत्र पढ़ै जीवन के काजा।
वामदेव मुनि जौं सहित सब शिष्य समाजा॥

(पीछे लगा के बाहर निकाल देता है)

परशु०—देखो क्षत्रियों का पाला बच्चा कैसा गरजता है। यह क्या करैगा। अभी है कोशलराज और विदेहराज के पाले ब्राह्मण और सातों कुलपर्वत और द्वीपों पर रहनेवाले सभी, हमारी बात सुनो।

तपस्या कै हथियार का जोहि काहुहि मद होइ।
समुझै निज निज वैरी प्रबल याहि छिन मो कहँ सोइ॥
बिन सौरध्वज करि जगत बिन दशरथ औ राम।
दोउ कुल के सब लोग हति लहै परशु विश्राम॥

(पर्दे के पीछे) परशुराम, परशुराम तुम बहुत बढ़ते जाते हो।

परशुराम—अरे यह तो हमको बुलाने को जनक बिगड़ रहे हैं।

(जनक आता है)

जनक—तजत सकल निज छत्रपद सौंपिन आवे।
परमब्रह्म की ज्योति माँहि नित ध्यान लगावे॥
दबो गृहस्थी माहिं जु क्षत्रिय तेज प्रचण्डा।
प्रगट होय सो उठवावत कर सन कोदंडा॥

परशु०—अजी जनक,

तुम धार्मिक अति वृद्ध लहे परमारथ ज्ञाना।
वेद पढ़ायो तोहि सुयंकर शिष्य प्रधाना॥
जोग जानि याहि हेत करौं आदर मैं तोरा।
तू केहि हित भय छाँड़ि कहत अस बचन कठोरा?

भाखौ न कछ मतिमान

जनक—तुम्हारे शिष्य जाय माहूँ मैं। जाको तुमो
जन्मो भृगुकुलविमल का यहि तपसी मुनि आनि।
रह्यो बैर लौं निशुद्ध को हम भाँति कलुषित आनि
तुम समान हम लखत नाहिं करत जाल अपमान।
उठै धनुष पाहि तुम पर अब उपाय नहिं आन॥

परशु०—(रोष से हँस के) क्या कहा तुमने! क्या
र! बड़ा अचरज है। (परशु सम्हाल कर)

ईखत त्रिपुरारि-धनुष धर्यो यह परशु कराला।
जो लखि क्षत्रिय सौंह हँसत जनु मदकल ज्वाला
याज्ञवल्क्य के आदर सों मोहि नवत निहारी।
वृथा फूलि यह डोकर क्षत्रिय गरजत भारी॥

जनक—तो कहना क्या है।

शैल सरिस इव कोटि वजन गरजत अति घोरा
लसै जीभ सी डोर चाप सो यहि छन मोरा।
मसन काज संसार काल जब बदन पसारै।
लीलन को यह तुष आज नाको छबि धारै॥

(धनुष उट

(परदे के पीछे)

करै जु सहस गाय नित दाना।
छुवै न सर तव हाथ पुराना॥
उचित न द्विज पर क्रोध तुम्हारा।
जनि उठाइये भूप हथ्यारा॥

जनक—माई महाराज दशरथ,

नाहिं अकाज हम कहैं जो कहई।
को द्विज के कटु वचन न सहई॥
कहतहि वचन अमंगल ऐसे।
ब्रह्मा रहत सहैं सो कैसे?

परशु०—अरे बाली को छूँक तू, इसे क्षमा कहता है, चुप न रह।

खोलि भँडार करेल की केसहु खाँहि सबै लहि काढ़ि बिरावै।
भोरि के छाती सुधाके दरे जहँ फेंकि औ ताँत पचेल मिलावै।
काढ़ि के सीस सभार के रक्त को मेल मैं रंग कपाल दिखावै।
कारै कुठार कठोर भलो यहु कोटी लौं कोटि नै विलगावै॥

(दशरथ आते हैं)

दशरथ—परशुराम मुनी जी।

तैसे इहाँ जनक नृप धीरा।
तैसे नाहिं तुम धरत शरीरा॥
तुम अब वृथा रारि जनि करहु।
हम सब कर धीरज किमि हरहु॥

परशु०—तो फिर?

दशरथ—हम क्षमा न करेंगे।

परशु०—तुम तो हमें और मालिक की नाईं धुड़क रहे हो। भूल गए कि जमदग्नि के लड़के परशुराम जनम से स्वतन्त्र हैं।

दशरथ—इसी से तो क्षमा नहीं कर सकते।

तजि मर्याद करै जो कर्मा।
तिनहिं सुधारब क्षत्रियधर्मा॥
तुम मर्याद लाँघि पद धारे।
हम क्षत्रिय तव दंडन हारे॥
होहु शान्त नतु एक छन माहीं।
मिलहि दंड तोहि संशय नाहीं॥
कहँ जप तप ब्राह्मन व्यवहारा।
कहँ यह क्षत्रिय जोग हथ्यारा॥

परशु०—(हँस के) बहुत दिन पर परशुराम के भाग खुले जो तुम क्षत्री उन को सुधारनेवाले मिले।

दशरथ—अरे इस में कुछ सन्देह है.

यदि होय पुत्र अज्ञान तें सन्देहु भ्रम मन में रहै।
जो करत विना विचार कछु, उपदेश सो गुरुजन गहै
जो भरत फिर सन्देह भ्रम लह जानि बूझि अकाज कै
तेहि दण्ड देइ न भूप, होय विनाश प्रजासमाज को।

विश्वा०—महाराजने बहुत ठीक कहा।

जो न होय तोहि ज्ञान होय कछु भ्रम सन्देहा।
पर वसिष्ठ के पास तासु छूटन विधि एहा॥
लहे शुद्ध मन ज्ञान कोउ किमि करै अकाजा।
सो कहिहै जो पाप लहै कैसे तेहि राजा॥

शु०—नर ज्ञान देहु अजान कहँ मेरे गुरु त्रिपुरारि हैं।
मैं कीन्ह क्षत्रिय नाश जेहि कोटि कुल वंश सुधारि है
हैं वृद्ध आदर जोग कहिय वसिष्ठ कहँ यहि सन कहा
को जीव जग महँ मो सरिस यहि काल कै कबहूँक र

वसि०—भृगु की संतान से हम हारे, यह बड़े आनन्
है परन्तु।

हमरेहि पालन जोग जो हम कहँ परम पियार।
हमरे ही घर में बसत अब देखत आचार॥

जनक, दश, और विश्वा०—यथार्थ यथार्थ नहीं बोलता!

गुरु सनातन जगत के राखै तासु न मान।
हम अब तोहि सुधारि हैं दुष्ट गयन्द समान॥

परशु०—ए सब तो मुझे मानते ही नहीं

भइयो परशु पाइ अपमाना।
यहि अवसर मो क्रोध समाना॥
यहि जग माहिं महीपति जेते।
रहैं सकल दशरथ बल तेते॥

मो अच्छा है,

बाहुबली जग को यह बैरी ।
क्षत्रिय नाम हेतु हिय हेरी ॥
करौ आज क्षत्रियकुलनासा ।
कुटिलकालमुख कर ग्रासा ॥
सुनि वृहन को वचन अशुरथ्य मन तुझ मेरो ।
लवणकान कोप लहान हिये तेहि क्षत्री कठोरी ॥
सो महक्रम अपमान पथ ज्यों आहुत ज्वाला ।
मलय काम तथ हदत बलान रत वायु कराला ॥

वसिष्ठ—कैसे शोक की बात है ।

यद्यपि अहै बन्धु यह तोरा ।
बाहुल बदन काज अति घोरा ॥
अहै अंव अनुपम मुनि सोई ।
केहि कारन अवलोप न होई ॥
जौ मैं याहि मारि क्रोध निहारा ।
हैहै भृगुकुलसंतति छारा ॥

विश्वा०—अरे परशुराम तू समझता है कि इन के पानी में ब्रह्मबल नहीं है वैसे ही इनके शस्त्र की शक्ति भी नहीं है ।
निन्दत क्षत्रि औ विप्र सभा लखिके को अनिष्ट हिय महँ आनो ।
ऐसे हैं दुःख हमैं अब लौं नहिं बोलैं हैं कन्या नरेश को जानो ।
कोप की आगि चढ़ी दहिले पर शापन को उठआवत पानो ।
हाथ लौं वायें दुहावत है धनु येति खेताय कै बान पुरानो ॥

परशु०—सुनो जी विश्वामित्र,

तुम्हरे ब्रह्मतेज जो भारी ।
होहु जाति बस कै धनुधारी ॥
निज तप प्रबल दहौ तप तोरा ।
भंजौ धनुहि परशु यह मोरा ॥
(पर्दे के पीछे)

मैं महात्मा कौशिकमुनि का चेला राम हाथ जोड़ के विन-
ती हूँ

नाथो, कृपानुख कीति जो फूलो हैहयईस।
जीवेंर पदमुख, नाहि मैं जीतौं देहु असीस ॥

दूत—मैया रामचन्द्र जागये अब क्या होगा।

जनक—जो अच्छी बात है उसे होने दीजिये। रामचन्द्र की
जै।

भूखन को सब यह हरिहैं तेजनिधान।
मुनि वसिष्ठ आदिक सकल यहि के अहैं प्रमान ॥

—निज प्रजापालनधर्मरत जग माहिँ विदित सदा रहे।
करि यज्ञ वेदविधान नित जो पुण्य रविकुलनृप लहे ॥
सोइ वंश मैं श्रीराम आजहि जन्म आयन जनु लहो।
सर्वज्ञ मानत ब्रह्म तासु प्रभाव जो यहि विधि कहो ॥

परशु०—आओ जी राजकुमार परशुराम को जीतो (मुसकाके)
त सकोगे। रेणुका का लड़का तुम्हारा काल है, बड़ा कठिन
का जीतना है। अब तो

कटत क्षत्रियन सीस चलत लोहू की धारा।
भड़कत शर की प्रबल आगि सब है छनकारा ॥
बजत डोरि धुनि गूँजि कुंज सम लहि ब्रह्मंडा।
कालघोरमुखकाज करै यह मम कोदंडा ॥

(सब बाहर जाते हैं)

चौथे अङ्क का विष्कम्भक

[स्थान—लङ्का, माल्यवान का घर]

(परदे के पीछे)

नो जी सुनो देवनाओ मंगल मनाओ, मनाओ

जय कृशाश्व के शिष्यवर विश्वामित्र मुनीस ।
जय जय द्विजपतिवंस के जानि अवध के ईस ॥
अभय करत जो जगत को करि [illegible] मन्द ।
सरन देत त्रैलोक्य कहँ जयति रघुकुलचन्द ॥

(घबड़ाए हुए शूर्पणखा और माल्यवान आते हैं)

माल्य०—बेटी तुमने देखा देवताओं में कितना एका है कि इन्द्र आदि आप से आप बन्दीजन बने जाते हैं।

शूर्प०—जो आप समझते हैं उससे और कुछ थोड़ा ही हो सक्ता है। मेरा तो जो कांप रहा है, अब क्या करना चाहिये।

माल्य०—करना यह है कि वह जो भरत की मा रानी कैकेई है उसे राजा ने बहुत दिन हुये दो वर देने को कहा था। आज कल दशरथ की कुशल छेम पूछने उसकी चेरी मन्थरा अयोध्या से मिथिला भेजी गई है, वह मिथिला के पास पहुँची है। उसके शरीर में तू समा जा और ऐसा कर (कान में कहता है)।

शूर्प०—तुम्हें विश्वास है कि वह अभागा मान जायगा।

माल्य०—यह भी कहीं हो सक्ता है कि इक्ष्वाकु के कुल में कोई भलमंसी छोड़ दे, न कि राम जो ऐसा वैरी का जय करने वाला है।

शूर्प०—तब क्या होगा।

माल्य०—तब इस योगाचारन्याय से राम को दूर खींच कर राक्षसों के पड़ोस में और विन्ध्याचल के खोहों में जहां इन का कुछ जानाहुआ नहीं है, हम लोग इन पर सहज ही चढ़ाई कर लेंगे। दण्डकवन के मुनियों को विराध दनु आदि राक्षस सताने लगैंगे। तब यह हो सकैगा कि राम के साथ राजसी बड़ाई तो कुछ रहैगी नहीं, उस समय छलकर राम का उत्साह मन्द कर देंगे। यह तो तुम जानती ही हो कि रावण ने जो सीता को अपनी